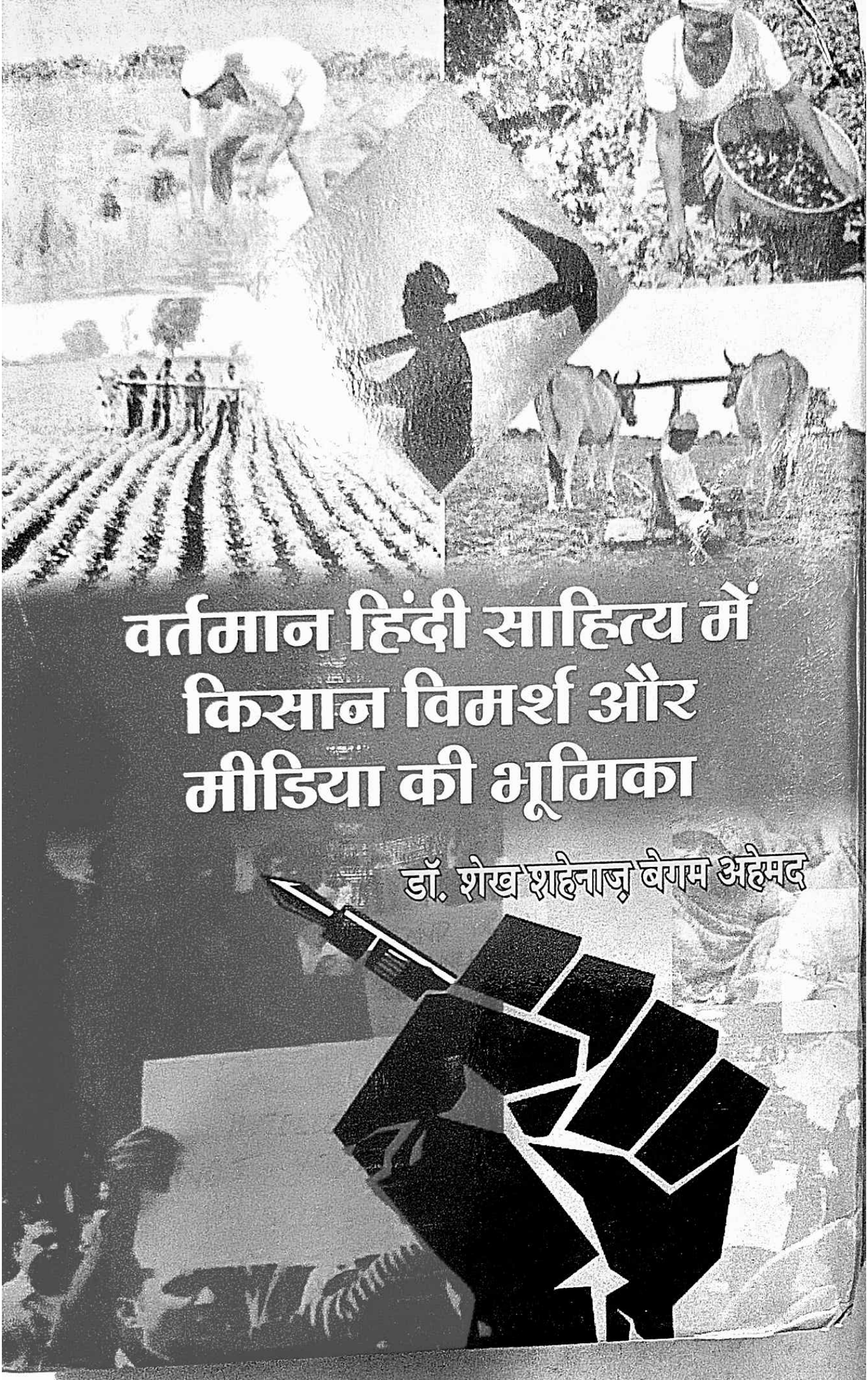

वर्तमान हिंदी साहित्य में किसान विमर्श और मीडिया की भूमिका

डॉ. शेख शहनाज़ बेगम अहमद

वर्तमान हिंदी साहित्य में किसान विमर्श और मीडिया की भूमिका

संपादक
डॉ. शेख शहेनाज़ बेगम अहेमद
सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी-विभाग
हुतात्मा जयवंतराव पाटील, महाविद्यालय
हिमायतनगर, नांदेड

संकल्प प्रकाशन
कानपुर (उ.प्र.)

इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना इस पुस्तक या इसके किसी भी अंश का किसी भी माध्यम से अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा, किसी भी रूप में, पुनरुत्पादित अथवा संचारित-प्रसारित नहीं किया जा सकता, इसे संक्षिप्त, परिवर्धित कर प्रकाशित करना कानूनी अपराध है।

ISBN : 978-81-951646-4-6
प्रथम संस्करण, 2021
© संपादकाधीन

पुस्तक : वर्तमान हिंदी साहित्य में किसान विमर्श और मीडिया की भूमिका

संपादक : डॉ. शेख शहेनाज़ बेगम अहेमद

प्रकाशक : **संकल्प प्रकाशन**

1569/14 नई बस्ती बक्तौरीपुरवा, बृहस्पति मन्दिर, नौबस्ता,
कानपुर (उ.प्र.)-208 021

दूरभाष : 094555-89663, 070077-49872

Email : sankalpprakashankanpur@gmail.com

वितरक : **समता प्रकाशन**

159/1 वार्ड नं. 12, बजरंगनगर, रूरा, कानपुर-देहात
दूरभाष : 9450139012, 9936565601
Email : samataprakashanrura@gmail.com

मूल्य : ₹ 695.00

शब्द-सज्जा : रुद्र ग्राफिक्स, हनुमन्त विहार, नौबस्ता, कानपुर-21

आवरण : गौरव शुक्ल, कानपुर-21

मुद्रण : आर्यन डिजिटल, दिल्ली

किसानों को सादर...

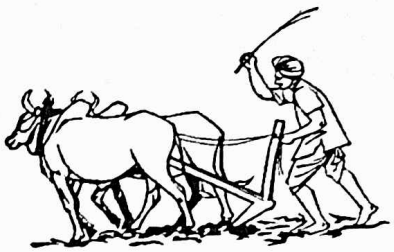

14. किसान और मीडिया
प्रा. डॉ. रत्नमाला धारबा धुळे
15. किसान आंदोलन और कवि बाबा नागार्जुन 79
डॉ. ज़हीरुद्दिन र. पठान
16. 'माटी का योद्धा' कवि केदारनाथ अग्रवाल पर केन्द्रित 87
डॉ. माधुरी पाण्डेय गर्ग
17. कृषिभित् कृषस्व (कृषि करो) 93
डॉ. नौनिहाल गौतम
18. किसान विमर्श : काव्य के संदर्भ मे 104
सब लेफ्टिनेंट डॉ. मोहम्मद शाकिर शेख
19. भारतीय किसानों के संघर्षपूर्ण जीवन का दस्तावेज : हिंदी गद्य साहित्य 108
डॉ. जितेंद्र पितांबर पाटील
20. किसान कवि 'धूमिल' 112
डॉ. माजिदा एम
21. किसान जीवन के यथार्थ का दस्तावेज़ जनकवि नागार्जुन का 'युगधारा' 118
डॉ. अंबिली.टी
22. समकालीन हिन्दी कविता में भारतीय किसान 124
डॉ. लता डी.
23. रामदरश मिश्र के उपन्यासों में किसान विमर्श 131
डॉ. शबाना हबीब
24. किसान विमर्श और साहित्य 136
विश्वनाथ कश्यप
25. किसानों के आत्महत्या की वास्तविकता – हत्या कहानी के संदर्भ में 141
प्रा. डॉ. संगिता लोमटे
26. प्रेमचंद के साहित्य में किसान की स्थिति 145
डॉ. शेखर घुंगरवार
27. प्रेमचंद के किसान की प्रासंगिकता साहित्य के माध्यम से 151
डॉ. दीपक विनायकराव पवार
28. वर्तमान हिंदी साहित्य में किसान आंदोलन और मीडिया की भूमिका 157
डॉ. शेख शहेनाज़ बेगम अहेमद
29. भारत में किसान आंदोलन 162
डॉ. भावना कमाने 170
30. वर्तमान हिन्दी साहित्य में किसान समस्या
डॉ. ज्ञानेश्वर गणपतराव रानमरे 174
31. फणीश्वर नाथ रेणु– आँचलिकता एवं किसान अवलोकन
डॉ. तुकाराम चाटे 179
32. हिन्दी साहित्य में किसान एवं कथाकार संजीव
विकास गजिंद्र परदेशी 184
33. मीडिया एवं किसान : दशा एवं दिशा
डॉ. शशि गुप्ता 189
34. किसान आन्दोलन एवं मीडिया (प्रेमचन्द के प्रेमाश्रम के विशेष संदर्भ)
श्री हीरेन्द्र गौतम 194
35. साहित्य और मीडिया : बाजारवाद का आधुनिक संदर्भ
प्रेम कमल उत्तम 197

28

वर्तमान हिंदी साहित्य में किसान आंदोलन और मीडिया की भूमिका

डॉ. शेख शहेनाज बेगम अहेमद

भारत एक कृषिप्रधान देश है। भारत की एक तिहाई जनसंख्या खेती पर ही निर्भर है। वह हमारा अन्नदाता है। आज किसान बहुत बुरी हालत से गुजर रहा है। किसानों की समस्याओं की दशा जानने से पूर्व हमें यह जानना होगा कि किसान किसे कहते है। यह किसान शब्द आया कहाँ से, किसान अर्थात खेती या कृषि से निर्वाह करनेवाला वर्ग किसान कहलाता है। भारत में परंपरागत राजाओं को भी कृषि या खेती से जोड़कर देखने का लोक और शिष्ट साहित्य मे उल्लेख मिलता है। जैसे– रामायण में राजा जनक, महाभारत में वीर बलराम 'हलधर' के रूप मे, राजा भोज को डोकरी मलिन के द्वारा शिक्षित के संदर्भ मे।

किसान वह जो खेती–बारी का काम करता हो, खेतों को जोतने, उनमें बीज बोने, होने वाली फसल की कटाई करने आदि काम करनेवाला व्यक्ति किसान कहा जाता है। तुलसी ने भी एक जगह उल्लेख किया है–

'तुलसी यह तन खेत है बच करम किसान'[1] बै.स.51

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है किसान शब्द ने कृषि–संस्कृति से कृषक से किसान तक की यात्रा तय की है। किसान शब्द मूल रूप से प्राकृत भाषा से आया है। इसका मूल अर्थ बहुत कम ही परिवर्तित हुआ है। समाजवादी विचारक राममनोहर लोहिया ने 'किसान' के संबंध में कहा है कि, "औद्योगिक मजदूर अब सही माने में सर्वहारा नहीं रह गया, भारत जैसे देश मे तो गरीब किसान और भूमिहीन किसान ही सही अर्थो में क्रांतिकारी हो सकते है।"[2] कृषि पर आधारीत हमें चार वर्ग दिखाई देते हैं। वे हैं–

1. भूमिपति या जागीदार, धनाढ्य किसान या नवसामन्त 2. मंझौले किसान 3. छोटी जोत के किसान 4. खेतिहर–मजदूर और कृषिदास।

यहाँ कृषि से जुड़े वर्ग को किसान की श्रेणी के अंतर्गत रखा जाता है। इस्न यह कि जमीनदार (भूमिपति) और कृषिदास का हित क्या है। धनाढ्य किसान परंपरागत भूमिपति को चुनौती देते हुए अपनी नवीन छवि और अस्मिता का निर्माणा करता है, जिसके कारण दोनों में संघर्ष चलता है। एक अपनी

परंपरागत स्थिति बरकरार रखना चाहता है तो दूसरा उत्पादन प्रणाली के अंतर्गत अपने को स्थापित करना चाहता है। यहीं संघर्ष केवल आर्थिक नहीं रह जाता बल्कि इसमें सामाजिक वर्गों की राजनीति, प्रशासन और सत्ता से गठजोड़ की शक्ति करती है।

जब हम बात करते हैं किसान आंदोलनों की तो भारत में किसान आंदोलन का एक लंबा इतिहास रहा है। देश में सहजानंद सरस्वती जैसे किसान नेता हुए हैं, जिन्होंने ब्रिटिश राज में यूनियन का गठन किया था। आजादी के पूर्व से देश में किसानों के कई विद्रोह और संघर्ष हुए, वे सब इतिहास के पन्नों में दर्ज हैं। ब्रिटिश सरकार की हुकूमत में किसानों पर कई प्रकार के लगान लगाए गए जिसके विरुध्द देश में अलग–अलग प्रदेशों में प्रदर्शन हुए थे।

किसानों का सबसे और प्रभावशाली आंदोलन सर्वप्रथम 1917 में में अवध प्रांत में हुआ। तब से लेकर यह सिलसिला चलता रहा। यह संघर्ष इतना बड़ा था कि इसकी खबर पूरे देश में फैल गई और महाराष्ट्र के किसान नेता बाबा रामचंदर कई किसानों के साथ इस आंदोलन में शामिल हो गए। बाबा रामचंदर को पूरी रामकथा कंठस्थ थी और वो गाँव–गाँव घूमकर उसे सुनाते और किसानों को इकठ्ठा करने का काम करते।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी जीवनी में इस आंदोलन का उल्लेख करते हुए कहा कि बाबा रामचंदर अवध में हुए किसान आंदोलन से काफी कुछ सीखा था। उत्तर भारत में अवध किसान सभा किसानों के सबसे मजबूत संगठन के रूप में उभर कर आया। उत्तर प्रदेश के किसान, ब्रिटिश हुकूमत की ओर से लगान में वृद्धि और उपज के रूप में लगान की वसूली के खिलाफ एकजुट होने लगे और उन्होंने एक आंदोलन शुरू किया अवध के किसान आंदोलन से ठीक एक वर्ष पहले महात्मा गांधी अफ्रीका से भारत लौटे। वे उत्तर भारत में हो रहे किसानों के शोषण को लेकर बहुत विचलित हुए। ब्रिटिश हुकूमत के काश्तकारी कानून में किसानों के लिए नील की खेती को अनिवार्य कर दिया गया था। किसान इस कानून से छुटकारा पाना चाहते थे। अरविंद सिंह कहते हैं कि, "महात्मा गांधी 10 अप्रैल को चंपारण पहुँचे और उन्होंने 15 अप्रैल से चंपारण में इस कानून के खिलाफ़ सत्याग्रह शुरू कर दिया था।"[2]

चंपारण सत्याग्रह की तरह ही उसी दौरान सरदार पटेल के नेतृत्व में गुजरात के खेड़ा और बरदोली में किसानों का भी सत्याग्रह आंदोलन हुआ। इसी आंदोलन के कारण वल्लभभाई पटेल को 'सरदार' की उपाधि दी गई। सन 1930 के दशक में ही महात्मा गांधी के आव्हान पर चौरी–चौरा आंदोलन भी हुआ। गांधीजी के साथ भारत भर में किसान एकजुट होने लगे और सन 1936 में सहजानंद सरस्वती के नेतृत्व में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी ने अखिल भारती

किसान सभा का गठन किया। इसी तरह आजादी के बाद भी आंदोलन चलते रहे। लालबहादुर शास्त्री के पंतप्रधान रहते हुए सन 1965 में हरित क्रांति आई, जिसने उत्तर भारत और पंजाब के किसानों को आत्मनिर्भर बनाया ही, साथ ही भारत में कृषि उत्पादन में भी काफी बढ़ोतरी हुई। लेकिन दूसरे राज्यों में किसानों के सामने कई समस्याएँ खड़ी होने लगी।

किसानों को हर बार राजनीतिक दलों से संघर्ष करना पड़ा। किसानों की मांग थी कि सरकार उनकी उपज का दाम सन 1967 से तय करे। महेंद्र सिंह टिकैत ने कई विदेश यात्राएँ की किसानों की समस्याओं और कानून को बखूबी समझा और उन्होंने मुफ्ती मुहम्मद सईद को समर्थन देकर लोकसभा में भेजा। नौबत यहाँ तक आयी कि उनके खिलाफ मायावती ने अनुसूचित उत्पीडन कानून के तहत मामला दर्ज कराया, तो सन् 1990 में मुलायम सिंह सरकार ने उन्हें गिरफ्तार करवाया।

भारत मे आजादी के बाद से लेकर आज तक हुए किसानों के आंदोलन या संघर्ष को देखा जाए तो यह स्पष्ट होता है कि, किसान संघर्ष तो करते रहते है, लेकिन जब बात वोट की होती है, तो उनका विरोध और आंदोलन वोट के रूप मे परिवर्तित नही होता है। मिसाल के रूप में मध्यप्रदेश के जिस मंदसौर मे किसानों का सत्तापक्ष के उम्मीदवार फिर से जीतकर आए जबकि किसानों ने उनपर अनदेखी के गंभीर आरोप लगाए थे। यही सवाल जब भारतीय किसान संघर्ष समिती के नेता वी.एम.सिंह से पूछा गया तो उन्होंने कहा कि, जब 80 के दशक तक किसान आंदोलन हो रहे थे, तो किसान जाति और धर्म के नाम पर बँटा हुआ नही था। और वे आगे कहते हैं, "किसानों के आंदोलनों के बाद राजनीतिक दलों को पता चल गया कि ये कितनी बड़ी ताकत है। इस एकता को तोडने के लिए राजनीतिक दलों ने किसानों के बीच जाति और धर्म के नाम पर फूट डालनी शुरू की। किसान इस जाल में फँस गए। यही वजह है कि किसानों की आवाज संसद और विधानसभाओं में ठीक तरह से नहीं उठ पाती।"[3]

अखिल भारतीय किसान सभा के विजू कृष्णन का कहना है कि, "किसान जब एकजुट रहे, उन्होंने सरकारों को झुकने पर मजबूर किया। सरकारों ने उनके आंदोलन को गंभीरता से भी लिया क्योंकि देश में बड़ी आबादी किसानों की है। किसानों की कमजोरी का फायदा राजनीतिक दाल और चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार उठाने की कोशिश करते रहे हैं।"[4]

नाओवादी कम्युनिस्ट पार्टी के ट्रेड युनियन के उपाध्यक्ष ज्ञान शंकर मजूमदार कहते, "हमने देखा है कि जब किसानों में एकजुटता रही तो मुख्यमंत्री और केंद्रीय मंत्री उनसे मिलने जाते थे। लेकिन राजनीतिक दलों ने किसानों को तोड़ने का काम किया जिससे उनकी ताकत कम हुई और नौबत

ऐसी है कि तो अब महीनों भी आंदोलन कर लें, उनसे मिलने या उनकी मांगों के बारे में बातचीत करने के लिए कोई अधिकारी या नेता नहीं जाता।"[5]

केंद्र सरकार ने कई तरह की योजनाओं की घोषणा की है लेकिन अभी इसका प्रभाव इतनी जल्दी नहीं दिखेगा। आज जिस प्रकार से मानसून बदलाव हो रहा है इसरो सीधा प्रभावित किसान वर्ग ही हो रहा है। आज भी देश में कृषि सरकार का जुआ है। जहाँ कृषि पूरी तरह मानसून पर निर्भर है वही कृषि का सबसे ज्यादा नुकसान तब होगा जब उसके द्वारा किए गए उत्पादन का सही दाम हासिल नहीं हो पाता है। सरकार ने घोषणा की है कि किसानों के लिए नई मंडिया बनाई जाएँगी। नई मंडिया बनाई भी जा रही हैं। लेकिन यहाँ ध्यान में रखना होगा कि इस मंडी से किसानों को कितना लाभ होगा क्योंकि यहाँ भी बिचौलिए अपना काम लेंगे और किसान को फिर भी मेहनत की कीमत नहीं मिल पाएगी। सबसे अहम बात है कि विपणन नीति को सुधारा जाए, अभी तक कृषि उत्पाद में बिचौलिए की भूमिका अहम है जिसको किसी भी प्रकार से खत्म करने या कम करने की आवश्यकता है। बिचौलिए कम होंगे तभी किसानों को अपनी फसल की पहले से ज्यादा कीमत हासिल होगी। इससे उपभोक्ता को भी किफायती दामों पर उत्पाद हासिल होगा।

आधुनिक काल में लोकसाहित्य के अलावा किसानों की प्रथम बार गद्यात्मक रूप में अभिव्यक्ति बंगला के 'नीलदर्पण' नाटक में हुई है। यह नाटक 1858 के किसान विद्रोह पर आधारित है। इस नाटक पर प्रतिबंध लगा दिया था। इसमें खेतिहर, मजदूर, किसान और संभ्रात भू–स्वामी के रिश्तों के नये ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ़ में चित्रित किया गया है। इस नाटक का पात्र तोरापनाम का संवाद, "चाहे मार क्यों न डाले, मैं नमकहरामी नहीं करूँगा जिन बड़े बाबू की वजह से जान बची है, जिनकी जमींदारी में खेती करता हूँ, जो बड़े बाबू हल–बैल बचाने को परेशान हैं, झूठी गवाही देकर उन्हीं बडे बाबू के बाप को कैद कराऊँ? मुझसे कभी नहीं होगा, चाहे जान चली जाए।"[6] इसी नाटक का एक पात्र गोपीनाथ का संवाद है कि– "तुम्हारे चावल परतो राख पड़ा गयी। नील के यम का तुम पर आक्रमण हुआ। अब तुम नहीं बच सकते।"[7] नील की खेती के विरोध में भारत वर्ष का किसान 19वीं सदी से लेकर 20वीं सदी के दूसरे दरार तक रहा। इसके विरोध में किसान एकजुट हुए। उनमें अपनी अस्मिता का बोध और अस्तित्व रक्षा का भाव पैदा हुआ। इस रूप में देखें तो 'नीलदर्पण' नाटक का किसान आंदोलनों के परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक महत्व है।

इसके पश्चात् उड़िया के उपन्यासकार फकीर मोहन सेनापति का 'छह मण आठ गुण्ड' (1897) उपन्यास प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में परंपरागत कृषि आधारित समाज के बदलते रूप को अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। राजस्थान का 'बिजोलिया' आंदोलन प्रजा–शक्ति से उत्पन्न हुआ। गुजरात का 'बारदोली'

किसान आंदोलन गांधीवादी तरीकों को अपनाकर सफलता प्राप्त करने वाला पहला किसान आंदोलन था। 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक के कृषक आंदोलनों की एक प्रमुख विशेषता की ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि– "कृषक चेतना व जुझारूपन ने अपने को संगठित रूप से सुदृढ करने का प्रयास किया।"[8]

इसी कालखंड में प्रेमचंद का लेखन युग–धर्म की प्रतिध्वनि बनता है। प्रेमचंद किसान को ग्रामीण तंत्र और नई आर्थिक व्यवस्था के तले दबते हुए देखते हैं। इसे वे 'महाजनी सभ्यता' के नाम से संबोधित करते हैं। जिसमें पूँजीवाद का प्रेत पुराने मानों–प्रतिमानों को लीलता जा रहा है। नये सामाजिक–संबंध अर्थ की पिशाच भूमि पर अवस्थित हो रहे हैं। अर्थात् अर्थ ही युग धर्म है। इस महाजनी सभ्यता में किसान की रंगभूमि का मसान होना तय है। यह मसान गोदान के साथ होगा। प्रेमचंद लिखते हैं कि, "पुरानी सभ्यता सर्वजन–सुलभ, प्रजातांत्रिक थी। ज्ञान और उपासना का, गंभीरता और सहिष्णुता का सम्मान राजा भी करता था और किसान भी करता था। आधुनिक प्रणाली ने जनसाधारण को अपनी परिधि से बाहर कर दिया है। उसने अपनी दीवार आडंबर पर खडी की है। भौतिकता और स्वार्थपरता उसकी आत्मा है। इसके बावजूद जनतांत्रिक ही आधुनिक सभ्यता का सबसे प्रधान गुण कहा जाता है।"[9]

प्रेमचंद की पक्षधरता उत्पादक एवं मेहनतकश वर्गों के साथ थी। प्रेमचंद अपने वैचारिक–लेखन में एक ओर वास्तविकता या यथार्थ लेकर चलते हैं। जैसे– "क्या यह शर्म की बात नहीं कि जिस देश में नब्बे फीसदी आबादी किसानों की हो उस देश में कोई किसान सभा, कोई किसानों की भलाई का आंदोलन, कोई खेती का विद्यालय,किसानों की भलाई का कोई व्यवस्थित प्रयत्न न हो। सैंकड़ों मदरसे और कॉलेज बनवाये, युनिवर्सिटियाँ खोली और अनेक आंदोलन चलाये मगर किसके लिए? सिर्फ अपने लिए, सिर्फ अपना प्रभुत्व बढाने के लिए। और शायद अपने राष्ट्र की जो कसौटी आपके दिमाग में थी उसको देखते हुए आपका आचरण जरा भी आपत्तिजनक न था। मगर नये जमाने ने एक नया पन्ना पलटा है। आनेवाला जमाना अब किसानों और मजदूरों का है। दुनिया की रफ्तार इसका साफ़ सबूत दे रही है।"[10]

पूंजीपतियों ने किसानों की खेती उजाड़ दी है। नई महाजनी सभ्यता के प्रेत से लड़ने के लिए एक नई समाज–व्यवस्था के स्वप्न को लेकर सिध्दांत पश्चिम से उदित हो रहा है जो नई संभावनाएँ पैदा करता है। यह अति आशावाद आज घनीभूत अंधकार में मिट–सा गया है। सन 1980 के दशक तक किसान मुद्दे प्राथमिक हो रहे थे क्योंकि किसानों ने अराजनीतिक अर्थात् मौजूदा राजनीतिक दलों की संस्कृति और तिकड़न से अपने को अलग रखा। एक नई राजनीति की शुरूवात की। लेकिन 1990 के आसपास नयी आर्थिकी और नेतृत्व किसान आंदोलन को कमजोर कर दिया।

किसान ने सन् साठ के दशक के उत्तरार्ध में अपनी ताकत से पहचान कराई। इसी दौर को आधार बनाकर विनोदकुमार ने 'समर शेष है' उपन्यास लिखा तो महाश्वेता देवी ने '1084 की माँ' उपन्यास की रचना की। जिसमें नक्सलबाड़ी आंदोलन की दस्तक की पूरी कथा भूमि के वातावरण पर हावी है। इसी दौर में सर्वाधिक सामाजिक आंदोलनों का दौर हुआ। इन आंदोलनों में मजदूर, दलित, स्त्री और जनजातीय या आदिवासी सामाजिक वर्गों का प्रमुख स्वर है। इनमें दलितोंने भूमिहीन वर्ग के रूप में और मजूरों ने भी भूमि की आकांक्षा की चाह में आंदोलन किये। ये सामाजिक जातीय संघर्ष के साथ–साथ आर्थिक सवाल को विशेषकर भूमि के प्रश्न को प्रासंगिक बनाते है। इसी प्रकार छप्पर' उपन्यास में भी एक प्रमुख मुद्दा है। इन्हीं आंदोलनों को और भूमिहीन तथा जनजातिय आंदोलन का दौर चल पड़ा। कोलों, संथालों,भीलों और खासी समुदायों के आंदोलन भूमि से जुडे हूए थे। इनको लेकर कथाकार संजीव ने 'जंगल जहाँ शुरू होता है,' 'सावधान! नीचे आग है, 'फाँस' उपन्यास लिखे। राकेशकुमार सिंह का 'पठार पर कोहरा' 'महाअरण्य में गिध्द', नाटककार हबीब तनवीर की 'हिरमा की अमर कहानी', ऋषीकेश सुलभ का, 'धरती आबा', कथाकार मीणा का 'धूणी तपे तीर', रोजा केरकेट्टा और निर्मला पुतुल ने भी अपने साहित्य में भूमि, जन, जंगल को लेकर अभिव्यक्ति की। वीरेंद्र जैन का उपन्यास "डूब' (1991) एशियाई कृषक समाज की गतिहीनता, शक्तिहीनता, आत्मग्रस्तता, बहुआयामी उत्पीड़न सहित विभिन्न प्रकार की पेचीदगियों का प्रतिनिधित्व करता है।"[11] इस उपन्यास को पंकज नइम, सुधीश पचौरी और रामशरण जोशी ने नई आर्थिकी के अर्थशास्त्र के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण बतलाया है। जिसमें माते का अरविंद से संवाद है– "यह क्या सुन रहे हैं महाराज। कोई समझाता क्यों नहीं इस सरकार को? आदमियों की कीमत पर जानवरों की रक्षा करना चाहती है यह? गरीबों के जीवन बलि लेकर अमीरों की तफरीह का बंदोबस्त करना चाहती है सरकार? और कोई इसका हाथ पकडने वाला नहीं बचा? कोई नही, कोई भी नहीं?"[12]

अर्थात् किसान के जीवन और जमीन से नई व्यवस्था कैसे भी खेल सकती है। किसान टैक्सपेयर वर्ग नहीं है। औद्योगिक विकास में कृषि का प्रतिशत घटा है। नेतृत्व कमजोर हुआ है। कारपोरेट दुनिया किसान की जमीन का अधिग्रहण करके नये फार्म बना रही है। उन्हें हाशियाकृत करने की यह सोच इस उपन्यास के मूल में है। जो समकालीन किसान जीवन की वास्तविकता बन रही है। जहाँ वह डूब क्षेत्र में जमीन के साथ स्वंय डूब रहा है। उसका विस्थापन हो रहा है।

कथाकार संजीव का उपन्यास 'फाँस' का किसान वर्ग सरकार के लिए फाँस ही बना हुआ है। न निकल पा रहा है और चुभन दे रहा है। रणेंद्र का

'गायब होता देश' खेतिहर समुदायों के अदृश्य होने की तस्वीर बयां करता है। इसी कड़ी में पंकज सुबीर का 'अकाल में उत्सव' (2016) उपन्यास आता है। जिसमें राजस्व प्रणाली जो कि किसान से राजस्व वसूलने के लिए बनाई गयी थी को समझाता है। "मतलब यह कि जागीरदारी के बन गए गिरदावर और पटेल के बन गए पटवारी। और राजा? है न अपना कलेक्टर, वह किसी राजा से कम है क्या? नाम बदल गए लेकिन काम वही का वही रहा।....चौकीदार, पटवारी और गिरदावर, यह तीनों कितने महत्वपूर्ण लोग हैं, यह केवल किसान ही बता सकता है। इनके पास होती है आर.आर.सी. जिसका पूरा नाम रिवेन्यू रिकवरी सर्टिफिकेट। इन आर.आर.सी.में जान फँसी होती है किसानों की।.... वसूली कितना खौफनाक शब्द है, यह कोई कर्जदार ही बता सकता है। वसूली के ठीक बाद की प्रक्रिया है कुर्की। यह जो अपने नाम से ही किसान को डराती है। कुर्की में वसूली से ज्यादा डर इज्जत उतरने का होता है। किसान, कर्जा, कलेक्टर और कुर्की चारों नामों को एकसाथ लेने में भले ही अनुप्रास अलंकार बनता है, लेकिन यह किसान ही जानता है कि इस अनुप्रास में जीवन का कितना बड़ा संत्रास छिपा हुआ है।"[13]

रामप्रसाद इस वसूली और कुर्की के धोखाधड़ी में फँस कर निरपराध आत्महत्या का शिकार बनता है। बैंकों की धांधली और रेवेन्यू विभाग की गलती से निर्दोष किसान आत्महत्या करने पर विवश होता है। 'अकाल में उत्सव' सरकारी तंत्र मानता है और किसान को मुआवजा कागजों पर मिलता है। ओमप्रकाश वाल्मिकी की 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' भी अशिक्षा और अज्ञानता के भँवर में पिसते भूमिहीन मजदूर की दास्तान है। लेकिन 'अकाल में उत्सव' का रामप्रसाद इस तंत्र से जूझ नहीं पाता और असमय इसकी अनीतियों का शिकार होता है।

आज भारत के किसानों के समक्ष बहुत सी समस्याएँ भी हैं और चुनौतियाँ भी हैं। वह जिसपर गर्व करता है, इठलाता था, उसको बाजार की ताकतों ने अपने कब्जे में दबोच लिया है। बीज के दाम बढ़ गये, फसल की कीमत घट गयी। रासायनिक खादों ने जमीन की उर्वरक शक्ति के बढ़ाने के साथ–साथ मिट्टी की गुणवत्ता को कम कर दिया। उसका आधार हिल गया है। कीटकनाशकों और रासायनिक औषधियों के कारण उसका स्वास्थ्य भी कमजोर हो गया है। उसकी फसल को थोक दाम नहीं मिल पाता। उसकी जमीन को सेज के नाम पर अधिग्रहण किया जा रहा है। इस वजह से वह सरकार और कार्पोरेट के विरोध में जा रहा है। किसान एकदम कठिन डगर पर पहुँच चुका है। जहाँ पर उसकी हर स्तर पर कठिनाईयाँ खड़ी होती जा रही हैं। मीडिया भी किसानों के पक्ष में नहीं है। वह हरदम किसान के विरोध में सरकार की बीन बजा रहा है। सरकार की तारीफ करते नहीं थक रहा है। किसान के अस्तित्व और अस्मिता पर गहरा संकट छाया हुआ है। अपेक्षा की जा रही है कि विचारशीलल वर्ग से,

उत्पादक श्रमिकों से कि वह किसान के लड़ाई में शामिल हो, उसे न्याय दिलाए। पर ऐसा हो नहीं रहा है। किसान के पास आज भी कुशल नेतृत्व है पर उसे राजनीति और मीडिया ने खोकलाकर तोड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। राजनीतिक वर्ग और मीडिया को चाहिए कि उनके नेतृत्व में संवेदनशील किसान वर्ग के बारे में सोंचे, पूरी निष्ठा से जिम्मेदारी निभाये। परंतु अफ़सोस है विचारशील वर्ग भी हाथ पर हाथ धरे किसान वर्ग का तमाशा देख रहा है। यह हमारी विडंबना नहीं तो और क्या है।

संदर्भ

1. हिंदी व्युत्पत्ति कोश, आचार्य बच्चूलाल अवस्थी, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2005 पृ.सं.929
2. किसान आंदोलनः दशा और दिशा, किशन पटनायक, संपादक सुनील, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 2006.
3. भारत में सामाजिक आंदोलन, घनश्याम शाह, अनुवादकः हरिकृष्ण रावत, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, संस्करण 2009.
4. किसान आंदोलनः दशा और दिशाः किशन पटनायक, संपादक सुनील, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2006.
5. वही,
6. नील दर्पण, दीनबंधु मित्र, रुपांतन्तर नेमिचंद्र जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पहला संस्करण 2006 पृ.सं.25.
7. वही, पृ.सं.17.
8. वही, पृ.सं.241
9. प्रेमचंद प्रतिनिधि संकलन, संपादक खगेंद्र ठाकुर, प्रधान संपादक – नामवरसिंह नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2002, पृ.सं.161–162.
10. वही –वही –पृ.सं.170.
11. डूब – वीरेंद्र जैन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1991, पृ.सं.02.
12. वही –वही –पृ.सं.279.
13. अकाल में उत्सव – पंकज सुबीर – शिवना प्रकाशन – सीहोर – प्रथम संस्करण जनवरी, 2016, पृ.सं.26–27.

सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी-विभाग
हुतात्मा जयवंतराव पाटील, महाविद्यालय
हिमायतनगर, नांदेड (महाराष्ट्र)